

लेखक

श्री अक्षयवर शुक्ल 'ग्रामीण'



प्रकाशक

न्यू थाट प्रेस, प्रयाग

सीख

लेखक
श्री अक्षयवर शुक्ल 'ग्रामीण'

प्रकाशक
न्यू थाट प्रेस
कर्नलगंज इलाहाबाद

१९५० [मूल्य दस आना

पाठ-सूची

कुछ शब्द

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में धार्मिक शिक्षा का अभाव है। भारत में धर्मों की विभिन्नता है और अधिकारी वर्ग के लिये यह एक कठिनाई है कि सरकारी पाठशालाओं में किस धर्म को शिक्षा का आयोजन किया जाय। यद्यपि धर्म विभिन्न हैं, तथापि सत्य एक है चाहे वह जिस धर्म के द्वारा प्रचारित हो। अतएव धर्मों के आधार पर मूल सत्य सिद्धांतों का विधान शिक्षा-प्रणाली में किया जा सकता है। किसी अंश तक इसका विधान किया भी गया है, परन्तु उच्च श्रेणी के विद्यार्थी ही इससे लाभ उठा सकते हैं। फिर भी इस विषय की शिक्षा व्यापक नहीं है। जो विद्यार्थी फिलासफी (दर्शन), एथिक्स, (चरित्रशास्त्र) आदि का अध्ययन करते हैं वे ही इससे लाभ उठाते हैं। यह शिक्षा भी पश्चिमी सभ्यता के रंग में इस प्रकार रंगी हुई है कि यह केवल तर्क-वितर्क का ही रूप धारण कर लेती है। यह शिक्षा विश्वास, संतोष और विनय आदि से जो धार्मिक शिक्षा के मुख्य अंग है वंचित ही रहती है।

विद्यार्थियों को तो किसी भी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं मिलती। यहाँ तक कि उनके शिक्षा विधान में सदाचार का भी अभाव है। सदाचार से धर्मों की विभिन्नता पर कोई प्रभाव पड़ता हुआ दिखलाई नहीं देता। अतएव सदाचार की शिक्षा उनके लिये नितान्त आवश्यक है। शिक्षा क्या है? शिक्षा केवल स्वभावों का संग्रह मात्र है। बालपन में जो स्वभाव बन जाता है वह बालक का साथ जीवन तक देता है। इस

समय अच्छे स्वभावों का संग्रह कितना आवश्यक है, इस पर जितना ही अधिक कहा जाय थोड़ा है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समाज का ऋण चुकाना है, समाज के प्रति उसका कर्तव्य होता है। माता, पिता, कुटुम्ब, देश और संसार समाज के अंग हैं। धर्म समाज से परे का विषय है। प्रत्येक के प्रति व्यक्ति का ऋण है और इस ऋण के चुकाने का स्वभाव डालना प्रारम्भिक शिक्षा का ध्येय होना चाहिये। यह स्वभाव सदाचार के द्वारा ही डाला जा सकता है। इस अभाव ने भारतीय संस्कृति पर पर्दा डाल दिया है और अब हम अपने ही देश में विदेशी विदित होने लगे हैं।

पाठशालाओं में असंयम है, गृहों में कलह है और समाज में कलुषित प्रथाएँ हैं।

श्रवण की तरह मातृ-भक्त, आरुणि की तरह गुरु-भक्त, सुभाष की तरह देश-भक्त और प्रह्लाद की तरह ईश्वर-भक्त, अब दिखलाई नहीं देते। इसका मुख्य कारण सदाचार की शिक्षा का अभाव है।

इस छोटी पुस्तिका का ध्येय है कि वह विद्यार्थियों को सदाचार के कुछ मार्ग दिखलावे।

—लेखक

१—जननी

बहुत दिन हुये इसी देश में श्रवणकुमार नाम का एक बालक था। उसके माता-पिता अंधे थे। उसने अपने माता पिता की सेवा का प्रण किया था। जिस प्रकार कहार बहँगी पर बोझ ले जाता है, श्रवणकुमार एक ओर अपनी माता को और एक ओर अपने पिता को कंधे पर बिठा कर बोझ की तरह ले जाता था। एक दिन वह अपने इस अमूल्य बोझ को रख कर निकट नदी में अपने माता पिता की प्यास बुझाने के लिए जल लेने गया। महाराज दशरथ शिकार के लिए आए हुए थे—समझे कि कोई मृग पानी पी रहा है—तीर मारा। तीर श्रवण को लगा और वह मर गया। राजा स्वयं जल लेकर आये परन्तु वृद्ध माता पिता ने अपने पुत्र को न पाकर अपने प्राण दे दिये।

श्रवण तू धन्य है! क्या इस युग में भी ऐसे बच्चे हैं। कितनी माताएँ बिलखती रहती हैं और पुत्र उनकी ओर ध्यान तक नहीं देते।

जब बालक जन्म लेकर चैतन्यता प्राप्त करता है वह अपने को माता की गोद में पाता है। माता ही उसका आश्रय है और माता ही सब कुछ है। उसका संसार माता तक ही सीमित है।

सत्य ही कहा जाता है कि संसार के सारे उपकार मापदंड के एक पलड़े पर और माता का उपकार दूसरे पर रक्खा जावे तो माता का उपकार ही अधिक तुलेगा।

क्या हम इस उपकार का बदला दे सकते हैं? कदापि नहीं। श्रवण ने बदला देने का प्रयत्न किया और अपने जीवन का भी दान दे दिया।

श्रवणकुमार के जीवन में भारतीय सभ्यता की छाप है। पश्चिमी रहन-सहन के अनुकरण ने इस छाप को मिटा दिया है। हमारा कर्तव्य है कि हम इस ऋण को सर्वप्रथम चुकायें।

जल की वर्षा करते हुए बादल यह नहीं देखता कि कौन सी भूमि उर्वरा है और कौन ऊसर। सब जगह समान वर्षा करता है। जननी का स्नेह भी ऐसा ही है। जननी यह नहीं देखती कि कौन पुत्र अच्छा है, कौन बुरा।

बच्चे के लिए यदि कहीं स्वर्ग है तो वह माँ की गोद है और तरुण के लिये यदि कहीं शक्ति है तो वह माँ का आशीर्वाद है। चातक की प्यास स्वाति-जल से ही बुझती है और बच्चे को शांति माँ के ही दुग्ध से होती है।

गुलाब में काँटा है, पंकज में पंक है, शशि में कला-क्षीणता है, सूर्य की किरणों में प्रखरता है और स्त्री के प्यार में स्वार्थ की गंध है, परन्तु माता का स्नेह निष्कपट, समान

शीतल छाँह अकाम है। माँ के प्रेम की समता संसार में नहीं। कवि कहता है:—

विकल व्यथित किलकार कर रोता था जब नींद न मुझको आती थी।
"आरी निंदिया! आरी, निंदिया!" कह कर कौन सुलाती थी।
और प्रेम से पलने में फिर मुझको कौन झुलाती थी।
मेरी मैया! मेरी मैया!

व्यथित और बीमार देख कर मुझे कौन अकुलाती थी।
बैठी ज्यौं मेरे मुख पर आँखें कौन गड़ाती थी।
और मेरे मरने के डर से आँसू विपुल बहाती थी।
मेरी मैया! मेरी मैया!!

मुझे गिर गया देख दौड़ कर तत्क्षण कौन उठाती थी।
फिर मेरा जी बहलाने को बातें कौन बनाती थी।
अथवा फूंक-फूंक कर अच्छी हुई चोट बतलाती थी।
मेरी मैया! मेरी मैया!!

[श्री जैनेन्द्र किशोर]

—:o:—

२—जन्मभूमि

बच्चों ! योरुप के दक्षिण में यूनान नाम का एक देश है। बहुत दिन की बात है फारस की प्रसिद्ध सेना ने लाखों की संख्या में यूनान पर चढ़ाई कर दी। थर्मापोली के तंग राह में केवल गिने हुये यूनानियों ने असंख्य फारस की सेना का सामना किया। देश-प्रेम ने इन वीरों को इतना उत्तेजित कर दिया कि उन्होंने अपने प्राण का लोभ न करके यह निश्चय किया कि जब तक एक भी यूनानी जीवित रहेगा फारसीय सेना राह न पा सकेगी। इन वीरों ने असंख्य फारसीय सेना को विमुख कर दिया और यूनान की स्वतंत्रता बच गई। देश-प्रेम का यह इतिहास अमर है।

पूर्ण उत्तर-भारत मुगल साम्राज्य का अंग बन चुका था। वीर अकबर का समय था। सारा राजपूताना अकबर की आधीनता स्वीकार कर चुका था। मेवाड़पति राणाप्रताप ही स्वतंत्र थे। एक प्रकार से सम्राट् अकबर और वीर शिरोमणि राणा में होड़ लगी हुई थी। महाराणा मेवाड़ की स्वतंत्रता के रक्षक थे और सम्राट् अकबर यह स्वतंत्रता हरण करना चाहते थे। महाराणा को इस स्वतंत्रता की रक्षा में जो संकट सहने पड़े वे अकथनीय हैं। राजा मानसिंह ने सम्राट् अकबर का पक्ष ले महाराणा पर चढ़ाई कर दी। लगभग चौदह सहस्र

राजपूत और भीलों के साथ राणा ने एक लाख से अधिक मुगलों का सामना किया। हल्दीघाटी पर एक भयानक युद्ध हुआ। देश-प्रेम ने राजपूतों को इतना उत्साहित कर दिया था कि वे थोड़े होने पर भी मुगलों के लिए अजेय हो गये। महाराणा के प्रसिद्ध घोड़े चेतक ने मानसिंह के हाथी के मस्तक पर अपना पैर जमाया और महाराणा ने अपना भाला सीधा किया। परन्तु हाथी पर उन्होंने सम्राट् को न पाकर केवल युवराज सलीम को समीप पाया। महाराणा हट गये। १४ हजार राजपूतों ने देश की वेदी पर अपना बलिदान किया। महाराणा भी बहुत घायल हो गये, परन्तु इस भयानक युद्ध ने सम्राट् अकबर के मन पर इतना प्रभाव डाला कि उन्होंने पुनः महाराणा की स्वतंत्रता छीनने का विचार नहीं किया।

इतिहास में महाराणा की यह वीरता एक अमर कहानी है। मालूम होता है कि अरावली का अंचल, जहाँ यह युद्ध हुआ था अब भी इस कहानी को प्रतिध्वनित कर रहा है।

मेवाड़ की स्वतंत्रता का युद्ध चल रहा था। महाराणा प्रताप के सैनिक आहत हो चुके थे। धन का नितांत अभाव था। महाराणा अपनी रानी और बच्चों के साथ अरावली की पहाड़ियों पर निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे। खाने के लिये भी भोजन पर्याप्त नहीं था। समय ऐसा आ गया कि महाराणा का चार वर्ष का पुत्र भूख से व्याकुल था और घास की रोटी जो उसके भोजन के लिए रक्खी गई थी,

जंगली बिलाव झपट कर उठा ले गया था । जिसराणा को तलवार की धार फूल की तरह मालूम होता थी, उस राणा को बच्चों की यह वेदना सहन न हुई और उन्होंने अकबर की आधीनता स्वीकार करने का विचार किया।

उसी समय उनके पुराने मंत्री भामाशाह जी आये और अपनी अतुल सम्पत्ति राणा को सौंप कर देश-सेवा का ऐसा परिचय दिया कि जिसकी तुलना इतिहास में नहीं है।

१८५७ का विद्रोह का समय था। अंतिम मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह ने एक प्रकार अपनी स्वतंत्रता खो दी थी और कम्पनी के दास की तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। देश-प्रेम की लगन ने बहादुरशाह को विद्रोहियों का साथ देने के लिये उत्साहित किया। यद्यपि कम्पनी का ऐश्वर्य्य फैला हुआ था और किसी को सिर उठाने का साहस नहीं था, बहादुरशाह ने विद्रोहियों का नेतृत्व स्वीकार किया और दिल्ली की जुम्मा मसजिद, में खुतबा पढ़ा गया और एलान किया गया, 'खल्क खुदा का मुल्क बादशाह का, अमल बहादुरशाह का'।

अंग्रेजों के विरुद्ध बहादुरशाह का यह शानदार कारनामा भारत के इतिहास में अमर है और अनेक युवकों का पथ-प्रदर्शन करता है और करेगा।

रंगून में इस निर्वासित बादशाह की बनी हुई कब्र देश-प्रेम के एक अपूर्व साहस की अमर कीर्ति है।

झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने भी देश-प्रेम की लगन में अँग्रेजों के विरुद्ध तलवार उठाई। झाँसी की रक्षा करने में असमर्थ होकर अपने छोटे दत्तक पुत्र को अपनी पीठ पर बांध कर अपने चुने हुए सिपाहियों के साथ अँग्रेजी सेना को चीरती हुई ग्वालियर पहुँच गई।

महारानी घोड़े पर सवार थी, पीठ पर उनका दत्तक पुत्र दामोदरराव ढाल की आड़ में बंधा हुआ था। महारानी का घोड़ा बीच में नाला पड़ जाने के कारण रुक गया और महारानी पर चारों ओर से तलवार का वार किया जा रहा था। गोलियां भी चल रहीं थीं। एक अंग्रेज की तलवार से महारानी का आधा सिर कट गया और उनकी एक आंख बाहर गिर गई। इतना होते हुए भी महारानी की तलवार अपने विपक्षी का सिर काट लेने में समर्थ हुई और महारानी ने अपने दत्तक पुत्र को देखते २ प्राण त्याग दिया। क्या इतिहास में देश-प्रेम का यह चित्र अद्वितीय नहीं है?

सन् १९४० ई० की बात है, योरोपीय युद्ध चल रहा था। जर्मनी विजय की ओर अग्रसर था। जापान भी युद्ध में उतर आया था। नेता जी सुभाषचन्द्र बोस अपने ही मकान में बन्दी थे। उन पर कड़ा पहरा था। उनका अधिक से अधिक जीवन अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध होने के कारण जेल में बीता था। देश-प्रेम उनके हृदय में लहरा रहा था। इस भीषण पहरे पर देश-प्रेम की लगन में व्याकुल नेता जी ने

रूप बदल कर एक पठान के भेष में अपनी जन्मभूमि का त्याग किया और काबुल होते हुए तथा अकथनीय कठिनाइयों का सामना करते हुए वे जर्मनी पहुँचे। नेता जी की यह अंतिम विदाई थी। देश को अंतिम प्रणाम था। परन्तु आशा थी वे देश को स्वतंत्र करके ही देश में पुनः पदार्पण करेंगे। जर्मनी होते हुए जापान पहुँचकर उन्होंने आज़ाद हिन्द की अस्थाई सरकार बनाई और अंगरेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। आज़ाद-हिन्द सेना युद्ध करते हुए आसाम तक घुस आई थी परन्तु जापानियों से उचित सहायता न मिलने पर उसे वापस लौटना पड़ा। समय ने पलटा खाया। जर्मनी को हार माननी पड़ी और परमाणु-बम के सामने जापान को भी सिर झुकाना पड़ा। १५ अगस्त सन् १९४५ ही को जापान ने आत्म-समर्पण किया और १८ अगस्त को वायुयान की दुर्घटना से नेता जी की मृत्यु का समाचार घोषित किया गया।

नेता जी द्वारा संगठित की हुई स्वतंत्र सेना की वीरता ने भारतीयों के मन में स्वतंत्रता की वह चिनगारी पैदा कर दी जो बृटिश साम्राज्य के बुझाने से न बुझ सकी। नेता जी इस समय इस भौतिक संसार में हैं या नहीं हैं, वे अपने देशवासियों के हृदय में अवश्य हैं। भारत के ऐतिहासिक गगन मंडल में नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस की यह अमर-कहानी पूर्ण-चन्द्र की तरह चमकती रहेगी।

सन् १९४२ ई० का समय था। महात्मा गांधी के संरक्षण में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हो चुका था। देश-प्रेम की जो आग सन् १८५७ई० में भड़की थी पुनः भड़क उठी। भारत में सहस्रों पुरुष और स्त्रियों ने अंगरेजी सत्ता के विरुद्ध नारे लगाये। दमन आरम्भ हुआ। सहस्रों युवकों के सीने अंगरेज़ों की गोलियों के निशाने बने। यह देश-प्रेम ही का मद था। देश को बलि-वेदी पर युवकों का यह बलिदान भारत के लिए गौरव-गाथा रहेगा।

हमने जननी के प्रति अपने ऋण को समझा। उन वीर और वीरांगनाओं की गाथा पढ़ी जिन्होंने देश-प्रेम में अपना बलिदान कर दिया। जननी तो बाल्य-काल ही में हमें गोद में लेती है, परन्तु हम जीवन-पर्यन्त जन्मभूमि की गोद में पलते हैं। जन्मभूमि की ही मिट्टी से हमारा शरीर बनता है और अंत में हम जन्मभूमि ही की गोद में सर्वदा के लिए सो जाते हैं। जन्मभूमि का ऋण हमारे ऊपर अपार है। हमारा कर्तव्य है कि हम इस ऋण को चुकाने का प्रयत्न करें। सर्वप्रथम हमें अपनी जन्मभूमि और अपने देश का प्रेम होना चाहिए। देश में ही हमारा जन्म हुआ है और देश ही हमारी जन्मभूमि है। कवि कहता है:—

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं॥

सत्य ही वह हृदय पत्थर है जो अपने देश की दशा पर

पसीजता नहीं। क्या हमें अपने देश का पुण्य ज्ञान है ? यह वही पुण्य-भूमि है जिसे हम आर्यावर्त, भारतखंड, भारत, हिन्द या हिन्दुस्तान कहते हैं। भिन्न-भिन्न समयों में इसका परिमाण भिन्न-भिन्न रहा है। प्राचीन काल में इसके विस्तार में विन्ध्यगिरि के उत्तर का सारा भाग जो हिमालय के नीचे है सम्मिलित था और पश्चिमोत्तर कोण पर इसमें फारस और अफगानिस्तान आदि की भूमि भी थी। धीरे-धीरे दक्खिन भारत भी इसी भूखण्ड में मिल गया और हिमालय से समुद्र तक की सारी भूमि हिन्दुस्तान के नाम से प्रसिद्ध हुई। सिंधु नदी का तट आर्यों का पवित्र स्थान माना जाता था। उत्तर-पश्चिम से मुसलमानों का आक्रमण हुआ और सिंधु तक की भूमि उनके आधीन हो गई। सिंधु शब्द से हिन्दु और हिन्दु से हिन्दुस्तान बन गया।

प्राचीन निवासी बुद्धिमान और सुसभ्य थे। संसार के सारे प्रसिद्ध देशों से उनका सम्बन्ध था। वे अच्छे नाविक थे और अपने देश में बनी हुई नावों के द्वारा दूर-दूर के देशों में व्यापार करते थे और सम्बन्ध स्थापित करते थे। लोगों का अनुमान है कि अमेरिका का ज्ञान प्राचीन हिन्दुस्तानियों को था और अफ्रिका और योरुप तो इनके निकट संबंधी थे। चुम्बक का भी ज्ञान भारतीयों को हो चुका था और चुम्बक के प्रयोग से ही वे समुद्र-यात्रा में दिशाओं का ज्ञान आसानी से कर सकते थे।

भारत का वैभव प्रसिद्ध था। भारत सोने की चिड़िया कहलाता था। वैभव के लालच से ही इस भूमि पर विदेशियों के आक्रमण हुए और धीरे २ इसकी स्वतंत्रता जाती रही।

भूमि की उपज प्रसिद्ध थी। दूध, घी, आदि उत्तम खाद्य पदार्थों की कमी नहीं थी। खनिज पदार्थों में भी यह प्रथम श्रेणी का देश था। दर्शन, गणित, खगोल, चिकित्सा आदि में भारत संसार का गुरु था। किसी भी सभ्य देश की ऐसी भाषा न मिलेगी जिसमें भारत के दर्शन न लिखे गये हों। गणित, खगोल और चिकित्सा शास्त्र में तो भारत की इतनी उन्नति हो चुकी थी कि वह अन्य देशवासियों के लिए अब तक आश्चर्य की वस्तु बनी हुई है। इस गिरे हुये समय में भी भारत की प्राचीन वेद-शालाएँ और भारत का आयुर्वेद तथा भारत की खगोल विद्या प्राचीन वैभव के द्योतक हैं।

धर्म में तो भारत बहुत ही आगे बढ़ा हुआ था। महात्मा बुद्ध के अनुयायी अब तक ४५ करोड़ से कम नहीं हैं। भारत के वेद और उपनिषद्-ज्ञान के भण्डार हैं। कृष्ण गीता में संसार के ज्ञान का रहस्य छिपा हुआ है।

वर्तमान समय में लोगों को परमाणु-बम का घमंड है। महाभारत में अश्वत्थामा द्वारा चलाए हुये आग्नेयास्त्र का वर्णन करते हुये व्यास जी ने जो चित्र खींचा है उसका आशय निम्नलिखित है "आकाश में से उल्के गिरने लगे, दिशाओं में अन्धकार छा गया, कम्पायमान कर देने वाला

पवन चलने लगा, सूर्य का तपना बन्द हो गया, पशु-पक्षी घबड़ाहट में पड़ गये और ज़ोर-ज़ोर से शब्द करने लगे। सम्पूर्ण प्राणी चक्कर खाने लगे, सूर्य निस्तेज हो गया और नीचे के लोक ऐसे तप गये कि जैसे ज्वर चढ़ आया हो। जलाशयों के गरम हो जाने से जलचर प्राणी भी जलने लगे और वे इतने तप गये कि उनको किसी तरह शांति ही नहीं मिलती थी जैसे प्रलय के समय से संवर्तक नाम की अग्नि सब प्राणियों को जला कर भस्म कर डालती है तैसे ही सेना भी आग्नेयास्त्र से जलने लगी और एक अक्षौहिणी सेना पल भर में जल कर भस्म हो गई।"

समुद्र पार करने के समय जब क्रोधातुर हो श्रीरामचन्द्र ने समुद्र सुखा देने के लिए धनुष पर बाण लगाया तो समुद्र का जल जलने लगा। तुलसीदास जी ने कहा है—

जबहिं लीन्ह प्रभु बिशिख कराला, उठि उदधि उर अंतर ज्वाला।
उरग मकर झष गन अकुलाने, जरत जन्तु जलधि तब जाने॥

क्या उपरोक्त वर्णन परमाणु-बम की भीषणता से कम है।

आज हम वर्तमान कला की सराहना करते हुये वायुयान, रेडियो आदि की सराहना करते हैं। क्या श्रीराम सैन्य सहित वायुयान पर लंका से नहीं आये? क्या निम्न लिखित वर्णन रेडियो के चमत्कार से कम है।

"मंत्र आकर्षण जप दस माला। अहिरावण डोल पताला।"

क्या हम ऐसे देश के लिये गर्व नहीं कर सकते, सैकड़ों

वर्ष की दासता ने देश को कंगाल और कलाहीन कर दिया।

सौभाग्य है कि अब हम स्वतंत्र हो गये। हमारी स्वतंत्रता का इतिहास भी अपूर्व है। इस स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिये परमाणु-बम का आश्रय नहीं लिया गया है, भयानक तोपों और गोलों का भी काम नहीं पड़ा है और न तो योरोपीय समर की तरह असंख्य प्राणियों का संहार ही हुआ है। इस समर के महारथी हैं हमारे राष्ट्र-निर्माता महात्मा गांधी और उनका अमोघ अस्त्र है अहिंसा। इस अस्त्र के सामने विश्व-विजयनी ब्रिटिश शक्ति ने अपना शिर झुकाया और १५ अगस्त सन् १९४८ ई० को भारत को स्वतंत्रता प्रदान कर दी।

इस समर में राणाप्रताप, और शिवा ऐसे देश प्रेमियों का अभिमान, नाना, तांतिया, बहादुर शाह, झांसी की रानी और समस्त १८५७ ई० के विद्रोहियों का साहस, तिलक, गोखले, लाजपत, दास, नेहरू आदि की सहनशीलता, सुभाष, रासबिहारी आदि का देश प्रेम, १९४२ ई० के युवकों की वीरता और अंतिम महात्मा गांधी का बलिदान सम्मिलित है। हम स्वतंत्र अवश्य हो गये हैं परन्तु हमें इस स्वतंत्रता को बचाना है और देश की उन्नति करना है।

यह कैसे हो सकता है? यह तभी होगा जब हम में देश-प्रेम जाग्रत हो। हमी में से प्रताप, शिवा और अकबर की तरह चतुर सेनापति; गोखले, तिलक, जिन्ना

और जवाहरलाल की तरह राजनीतिज्ञ; सुभाष की तरह देश-प्रेम और महात्मा गांधी के समान त्यागी पैदा हो सकते हैं।

अवसर की कमी थी, हमें अब अवसर मिल गया, कोई कारण नहीं है कि हम अपनी त्रुटियों को दबा कर ऊपर न उठें और अपने खोये हुये वैभव को पुनः प्राप्त न कर सकें।

जिन महान् पुरुषों का उल्लेख किया गया है। उन्होंने अपने त्याग से देश का मुख उज्वल किया है। हमें चाहिये कि हम उनके जीवन चरित्र को पढ़ें और प्रत्येक का बड़प्पन चरित्र हमारे लिये पथ-प्रदर्शक होगा। कवियों की ओजस्वनी वाणी देश के विषय में क्या बतला रही है ?

सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम्,
शस्य श्यामलाम्, मातरम्। वन्दे मातरम्

शुभ्र ज्योत्स्नाम्, पुलकित यामनीम्,
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभनीम्,
सुहासिनीम्, सुमधुर भाषिणीम्,
सुखदाम्, वरदाम्, मातरम्। वन्दे मातरम्

त्रिशंत्कोटि-कंठ कल-कल निनाद करा ले,
द्विरिशंत्कोटि भुजैधृर्त खर करवा ले,
बहुबल धारणीम्, नमामि तारणीम्,
रिपुदल वारणीम्, मातरम् वन्दे मातरम्

श्यामलाम् सरलाम् सुस्मिताम् भूषिताम्,
धरणीम्; भरणीम्, मातरम्। वन्दे मातरम्

[बंकिम चन्द्र

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं उसकी, वह गुलिस्ताँ हमारा॥
पर्वत वो सबसे ऊँचा हम साया आसमाँ का।
वह संतरी हमारा वह पासबाँ हमारा।
गोदी में खेलती हैं जिसके हजारों नदियाँ।
गुलशन हैं जिसके दम से रश्के जिनाँ हमारा।
अय आबेरोद गंगा! वह दिन है याद तुमको।
उतरा तेरे किनारे, जब कारवाँ हमारा॥
मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिन्दी हैं, हमवतन है, हिन्दोस्ताँ हमारा॥

[इकबाल]

जिस पर गिर कर उदर-दरी से जन्म लिया था।
जिसका खाकर अन्न, सुधा सम नीर पिया था।
जिससे हम को प्राप्त हुये सुख साधन सारे।
जिस पर हुये समाप्त हमारे पूर्वज प्यारे।
वह पुण्य भूमि भारत मही, हम इसके संतान हैं।
कर इसकी सेवा हृदय से, पा सकते सम्मान हैं॥

पं० रामनरेश त्रिपाठी]

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊँ।
चाह नहीं, प्रेमी माला में विंध-प्यारी को ललचाऊँ॥
चाह नहीं, सम्राटों के सर पर, हे हरि डाला जाऊँ।
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली, उसी वन में देना फेंक॥
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।

[श्री माखनलाल चतुर्वेदी]

जन्म दिया माता सा जिसने, किया सदा लालन पालन।
जिसकी मिट्टी जल से ही है, रचा गया हम सबका तन॥
गिरवर गण रक्षा करते हैं, उच्च उठाकर शृंग महान।
जिनकी लता द्रुमादिक करते हमको अपनी छाया दान॥
माता केवल बाल-काल में निज अंकन में धरती है।
हम अशक्त जब तलक तभी तक पालन पोषण करती है॥
मातृ भूमि करती है सब का, लालन सदा मृत्यु पर्यन्त।
जिसके दया प्रवाहों का नहीं होगा सपने में भी अंत॥
मरने पर भी कण देहों के उसमें ही मिल जाते हैं।
हिन्दू जलते यवन ईसाई दफ़न उसी में होते हैं॥
ऐसी मातृ-भूमि मेरी है, स्वर्ग लोक से भी प्यारी।
जिसके पद कमलों पर मेरा तन मन धन सब बलिहारी॥

[श्री मन्नन द्विवेदी]

जग-बीच स्वर्ग हमारो देश।

भारत अस शुभ नाम लेत जन, उपजत प्रेम विशेष।
तापै जन्म भूमि शोभा लखि, रहत न दुख लवलेश॥
पग तर उदधि रहत शिर ऊपर, नील-छत्र-स-दिनेश॥
उत्तम हिम गिर परम मनोहर, जहँ नित रमत महेश॥
पावन निर्मल गंग नीर जेहि, परहत कटक कलेश॥
प्रगटे ब्रह्म रूप जग कारक, जहं व्रजेश अवधेश॥
धर्म ध्वजा फहरात जहाँ नभ, रहत न ग्लानि अशेष।
'माधव' अस लखात कतहुँ, नहिं जस मम भारत देश॥

[श्री माधव]

—:※:—

३–गुरु भक्ति

बहुत समय की बात है आरुणि नाम का एक बालक अपने गुरु के पास शिक्षा ग्रहण कर रहा था। गुरु ने आज्ञा दी कि पानी बह रहा है, जाकर मेंड़ बना कर पानी रोक दो। आरुणि मेंड़ बनाने का प्रयत्न करने लगा, परन्तु मेंड़ से पानी का प्रवाह न रुका। गुरु-आज्ञा समझ आरुणि स्वयं मेंड़ बन कर पानी के बहाव को रोकते हुए लेट गया। अधिक काल बीत जाने पर गुरु ने आरुणि की खोज कराई, परन्तु जब वह न मिला तो स्वयं उसकी खोज में निकले। देखा कि मेंड़ बना हुआ आरुणि पानी को रोक रहा है। गुरु की प्रसन्नता का वारा पार न रहा और उन्होंने आरुणि को हृदय से लगा कर आशीर्वाद दिया। गुरु की कृपा से आरुणि की सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण हो गई।

द्वापर का अंत था। कृष्ण भगवान का अवतार हो चुका था। कौरव और पांडव महाभारत की तैयारी कर रहे थे। एकलव्य नाम के एक भील शिशु ने शस्त्र विद्या के आचार्य द्रोण से धनुर्वेद सिखलाने की प्रार्थना की। छोटी जाति का बालक समझ द्रोण ने उसे धनुर्विद्या सिखलाना उचित न समझा। एकलव्य उदास होकर बन में चला गया और गुरु द्रोण की एक मूर्ति बना

कर और उसी मूर्ति को गुरु समझ कर वह धनुर्वेद का अभ्यास करने लगा। इस अटूट लगन और गुरुभक्ति ने उसे अद्वितीय धनुर्द्धारी बना दिया। एक बार गुरु द्रोण अपने शिष्यों के साथ बन में गये और एकलव्य के चमत्कार को देख कर आश्चर्य में पड़ गये। सोचा कि यह एकलव्य उनके सब शिष्यों से बढ़ कर होगा। ईर्षा की आग भभक उठी और गुरु ने एकलव्य के साथ छल करना चाहा। पूछा तुम किसके शिष्य हो? उत्तर मिला "मैं गुरु द्रोण का शिष्य हूँ।" गुरु ने कहा कि यदि तुम द्रोण के शिष्य हो तो मैं द्रोण यहाँ उपस्थित हूँ और दक्षिणा चाहता हूँ। एकलव्य ने मुँह माँगी दक्षिणा देने का वचन दे दिया। गुरु ने दाहिने हाथ का अंगूठा माँगा और एकलव्य ने प्रसन्नता पूर्वक काट कर अपना अंगूठा गुरु के चरणों पर रख दिया। इस बलिदान से एकलव्य के बाण चलाने की शक्ति जाती रही परन्तु उसकी गुरु-भक्ति संसार के लिये उदाहरण बन गई। गुरु ने आशीर्वाद दिया कि जिस समय धनुर्विद्या भारत से उठ जावेगी उस समय भी एकलव्य को जाति यानी भील जाति ही उससे परिचित रहेगी।

क्या अब भी आरुणि और एकलव्य के समान गुरु-भक्त विद्यार्थी हैं? छोटी पाठशालाओं से लेकर विश्व विद्यालयों तक असंयम की चर्चा है। बात २ पर गुरु-आज्ञा की अवहेलना होती है और गुरु का अपमान किया जाता है। यह

समय का ही दोष है और पश्चिमी सभ्यता की एक देन है। हमारी प्राचीन संस्कृति में गुरु का स्थान ऊँचा है। गुरु की आज्ञा से बढ़कर कोई आज्ञा नहीं। इस प्राचीन संस्कृति में एक अद्भुत सार छिपा हुआ है। गुरु के सामने निष्कपट हो जाने से हमारा अंतःकरण शुद्ध हो जाता है और वह ऊँची से ऊँची विद्या का अधिकारी होता है। गुरु की कृपा से बढ़ कर दूसरा आशीर्वाद नहीं।

जो अज्ञान सारे बंधनों का मूल कारण है वही अज्ञान गुरु के द्वारा दूर होता है। गुरु से बढ़ कर कौन ऊँचा हो सकता है और वह कौन सम्मान है जिसका अधिकारी गुरु नहीं। राम और कृष्ण समान प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने गुरु-भक्ति को अपनाया और हमारा पथ प्रदर्शन किया। यह अभाग्य की बात है कि हम अपनी इस प्राचीन संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। यह हो सकता है कि वर्तमान सभ्यता ने गुरुओं का भी वातावरण दूषित कर दिया हो परन्तु हम अपना कर्तव्य क्यों न पालन करें?

अपने कर्तव्य से हम गुरु-वर्ग का भी सुधार कर सकते हैं। सच पूछा जावे तो भारत का मान गुरुओं के द्वारा ही रहा है और बहुत अंश तक भारत का कल्याण गुरु-वर्ग के सुधार से हो सकता है। शायद अर्जुन का नाम इतना बड़ा न हुआ होता यदि द्रोण उनके गुरु न होते, विश्व-विजयी सिकन्दर को इतनी ख्याति प्राप्त न होती यदि अरस्तू [illegible]

उसका गुरु न होता।

हमी बढ़ कर गुरु हो सकते हैं। क्या हम अभी से उ आदर्श को अपनाना नहीं चाहते जो प्राचीन गुरुओं क था? यह कब हो सकता है? यह तभी होगा जब पहि हम आरुणि के समान शिष्य बनें। हम अच्छे शिष्य ब कर ही अच्छे गुरु भी बनेंगे। प्रथम ध्येय हमारा गुरु क सम्मान है। देखो, गुरु की महिमा का गान गोस्वाम तुलसी दास जी क्या कर रहे हैं?

बन्दौ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रवि-कर-निकर॥

बन्दौ गुरु पद पद्म परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू।
सुकृतशंभुतन बिमलबिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूनी।
जनमन मंजुमुकुरमल हरनी। कियेतिलक गुनगनवश करनी।
श्रीगुरु पदनखमनिगनजोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह तमसोसुप्रकाशू। बड़े भाग उर आवहिं जासू।
उघरहिं बिमलबिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।



४–समाज सेवा

एक समय हज़रत आदम अपने कमरे में लेटे हुए थे। एक फरिश्ता कमरे को प्रकाशित करते हुए, उसमें प्रवेश कर, कुछ लिखता हुआ सा जान पड़ा। आदम ने पूछा "हज़रत आप क्या लिख रहे हैं ?"

फरिश्ते ने उत्तर दिया "मैं उन आदमियों का नाम लिख रहा हूँ जो ईश्वर को प्रेम करते हैं।" आदम ने पूछा "क्या उस सूची में मेरा नाम है ?" उत्तर मिला 'नहीं'। आदम ने कहा "यदि ईश्वर के प्रेम करने वालों में मेरा नाम नहीं है तो कृपया मेरा नाम उन लोगों की सूची में लिख लीजिये जो ईश्वर के बन्दों से प्रेम करते हैं" फरिश्ता चला गया और दूसरे दिन अपने प्रकाश से कमरे में चकाचौंध पैदा करते हुए पुनः प्रवेश किया। आदम ने प्रश्न किया 'हज़रत आज आप क्या लिख रहे हैं ?' उत्तर मिला, 'मैं उन आदमियों का नाम लिख रहा हूँ जिसको ईश्वर प्रेम करता है और इस सूची में आपका नाम प्रथम है'।

सत्य है, जो प्राणी ईश्वर के बनाये हुए जीवों पर दया करते हैं वही ईश्वर का सच्चा प्रेमी है और ईश्वर भी उसी को प्रेम करता है।

नावाखोली का विप्लव प्रसिद्ध है। धर्म के नाम पर सहस्त्रों पुरुष तलवार के घाट उतार दिये गये। सहस्त्रों स्त्रियों का सतित्व हरण हुआ और सहस्त्रों वच्चे यतीम हो गये। महात्मा गांधी से यह दुःख देखा न गया। निर्भय होकर ७७ वर्ष की अवस्था में नावाखोली की पैदल यात्रा की। लोगों के दुखों का निरीक्षण किया और उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया। महात्मा गांधी समाज की सेवा करना जानते थे और उसको अपना धर्म समझते थे।

दिल्ली ऐश्वर्य्य और सुखमा की राशि है। भारत की राजधानी है। कौन सा ऐसा ऐश्वर्य्य और सुख था जो दिल्ली में महात्मा गांधी के पैरों पर न लोटे। परन्तु महात्मा को हरिजन बस्ती से ही प्रेम था। महात्मा का ध्येय समाज का उत्थान था और समाज के उत्थान में ही वे देश का उत्थान समझते थे।

बालपन में महात्मा बुद्ध कपिलवस्तु के प्रसाद में टहल रहे थे। सामने उद्यान में चिड़ियाँ चहक रही थीं। बुद्ध के एक सखा ने चिड़िया को मारने के लिए अपने धनुष पर तीर चढ़ाया। महात्मा बुद्ध इस दृश्य को सहन न कर सके।

संसार भर की सुख सामग्री बुद्ध जी के आराम के लिए एकत्रित की गई, परन्तु दुखी संसार उनके आँखों के सामने नाच रहा था। संसार की सुखमा, सुन्दर स्त्री का पवित्र प्रेम, नवजात शिशु की ममता, बुद्ध को रोक न सकी

और वे संसार के दुःखों का दूर करने के लिये बाहर निकल पड़े।

प्रभु ईसा ने कहा है "अपने पड़ोसी को वैसे ही प्यार करो जैसे तुम अपने को प्यार करते हो" सत्य ही है संसार पड़ोसी है और संसार का प्रेम हमारा हमारा धर्म है।

कृष्ण भगवान् ने अर्जुन का भ्रम दूर करते हुये गीता में कहा है "ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्व भूत हिते रता"।

जो सब प्राणियों के हित में लगा रहता है वही पुरुष मुझे प्राप्त होता है। कितना उज्वल ज्ञान है। प्राणि-मात्र का हित करना ही भगवान् को पाना है। अतः हमें प्राणि-मात्र को अपने समान समझना चाहिये।

क्या उपरोक्त शिक्षाएँ हमें बाध्य नहीं करतीं कि हम समाज से प्रेम करें और उसके उत्थान में तत्पर हों? इसके लिये हमें त्याग करना है। बुद्ध ने त्याग किया और महात्मा गांधी ने भी त्याग किया। यदि हम इतना बड़ा त्याग करने के लिये समर्थ न हों तो भी हम अपनी भलाई करते हुये संसार की भलाई कर सकते हैं। यदि समाज की भलाई करने में हमें कुछ हानि उठानी भी पड़े तो हमें उस हानि को सहन करना है। यही हमारा त्याग है।

जिस काम से अधिक से अधिक व्यक्तियों का उपकार हो वह काम उत्तम है। हमारे ऊपर समाज का ऋण है। सच पूछो तो समाज ने ही हमारा जन्म दिया, समाज से ही

हमारा पालन हुआ और समाज की ही देन पर हमार अस्तित्व निर्भर है। यदि समाज की पूरी देन हमसे अलग कर दी जावे तो हमारा अस्तित्व ही शून्य हो जाता है अतएव समाज की छल-रहित सेवा ही हमारा परम धर्म है। देखो कवि क्या कह रहा है:—

'मनुष्य मात्र बन्धु है' यही बड़ा विवेक है,
पुराण पुरुष स्वयं पिता प्रसिद्ध एक है।
कलानुसार कर्म के अवश्य बाह्य भेद हैं।
परन्तु अतरैक्य में प्रमाण भूत वेद हैं।
अनर्थ है कि बन्धु ही न बन्धु की व्यथा हरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे।

चलो अभीष्ट मार्ग में सहर्ष खेलते हुए,
विपत्ति विघ्न जो पड़ें, उन्हें ढकेलते हुए।

घटे न हेल मेल हां, बढ़े न भिन्नता कभी,
अतर्क एक पंथ के सतर्क पंथ हो सभी।
तभी समर्थ भाव है कि तारता हुआ तरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे।

सहानुभूति चाहिये, महा विभूति है यही,
वशीकृता सदैव है बनी हुई स्वयं मही।
विरुद्ध बाद बुद्ध का दया प्रवाह में बहा.
विनीत लोक-वर्ग क्या न सामने झुका रहा ?
अहा ! वही उदार है परोपकार जो करे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे।

उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती,
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती।
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति गूंजती,
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती।
अखंड आत्म भाव जो असीम विश्व में भरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे।

विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी,
मरो, परन्तु यों मरो कि याद जो करें सभी।
हुई न यों सुमृत्यु तो वृथा मरे वृथा जिये,
मरा नहीं वही कि जो जिया न आप के लिये।
यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे।

[श्री मैथलीशरनगुप्त]

—:o:—

५—ईश्वर प्रेम

जब २ संसार में अत्याचार बढ़ा है, देवताओं ने भगवान् की प्रार्थना की है और भगवान् ने उनकी प्रार्थना पर ध्यान देकर उनका दुःख दूर किया है।

जब २ होइ धर्म की हानी, बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
तब २ प्रभु धरि मनुज शरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

प्रहलाद जो ईश्वर से प्रेम करते थे। उनका पिता हिरण्यकश्यप इस प्रेम को सहन न कर सका। वह ईश्वर के अस्तित्व को ही नहीं मानता था। प्रहलाद को रोका, परन्तु प्रहलाद का प्रेम अटूट था। उसने प्रहलाद को अपने महल के खंभे में बांध दिया और तलवार लेकर प्रहलाद का बध करना चाहा। बध करने के पहिले उसने प्रहलाद से पूछा "बताओ तुम्हारे रक्षक भगवान् कहाँ है?" प्रहलाद ने उत्तर दिया "मुझमें, तुझमें, खड्ग, खम्भ में, सब जग व्यापे राम।" ऐसा उत्तर देते हुये उन्होंने भगवान् से भक्तों की रक्षा और उनकी लाज बचाने की प्रार्थना की। हिरण्यकश्यप ने तलवार चलाई और खम्भे को फाड़कर भगवान् प्रकट हुये। हिरण्यकश्यप मारा गया और प्रहलाद बच गये।

महाभारत के युद्ध की तैयारी थी। कौरव पाण्डव तैयार होकर युद्ध के मैदान में खड़े थे। दोनों तरफ की १८

...सेना प्रस्तुत थी। भगवान् श्री कृष्ण ने अपने सखा अर्जुन से कहा कि तुम विजय के लिये आदि शक्ति की प्रार्थना करो। अर्जुन ने प्रार्थना की और विजय श्री उनके हाथ रही।

भगवान् वेदव्यास महाभारत की रचना करना चाहते थे। रचना प्रारम्भ करने के पहिले उन्होंने आदि देव श्री नारायण और वाणी की देवी सरस्वती की प्रार्थना की और उनकी महाभारत का रचना पूरी हुई।

प्रभु ईसा मसीह अपने शिष्यों को सलाह देते थे कि प्रार्थना से ही सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होगी। जब उन पर विश्वास न करने वालों ने प्रभु ईसा को सूली पर चढ़ा दिया और जब उनको अधिक से अधिक शारीरिक पीड़ा हो रही थी उन्होंने अपने लिये नहीं अपने शत्रुओं के लिये प्रार्थना की "पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि वे नहीं जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं।"

ईश्वर-प्रार्थना महात्मा गांधी के जीवन का एक अंग था। प्रति दिन वे सहस्रों पुरुष और स्त्रियों के बीच भगवान् की प्रार्थना करते थे।

यह भगवान् कौन हैं और प्रार्थना क्या है? देवता लोग भी आपत्ति पड़ने हर भगवान् की शरण में जाते हैं। जीवन संकटमय होने पर भक्त भगवान् का स्मरण करता है। विजय-प्राप्ति के लिये योद्धा शक्ति की प्रार्थना करता

है। अपनी रचना के पहिले कवि भगवान् और वाणी की प्रार्थना करता है। कृष्ण, क्राइस्ट और गांधी समान प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति भगवान् की प्रार्थना के समर्थक हैं। क्या हमने इस बात पर विचार किया है? पाठशालाओं में भी तो बहुत से लोग ऐसे मिलेंगे जो भगवान् को मानते ही नहीं। पाठशालाओं के बाहर भी हमें बहुत से लोग मिलेंगे जिनका विश्वास भगवान् पर नहीं है। यदि है भी तो उनका जीवन इस प्रकार बीत रहा है कि उनके लिये भगवान् का अस्तित्व नहीं के बराबर है।

वेदों में बतलाया हुआ पंच-यज्ञ और कुरान शरीफ़ में वर्णित पाँच समय की नमाज़ क्या है? यह भगवान् की प्रार्थना ही तो है।

हम क्या हैं? सोचने समझने वाले प्राणी ही तो हैं। यदि हमारा अस्तित्व है तो सोच और समझ (चैतन्यता) का भी अस्तित्व है और यदि चैतन्यता का अस्तित्व है तो क्या अपरिमित चैतन्य के भण्डार का अस्तित्व नहीं है जिससे अपरिमित चैतन्य व्यक्तियों का अविर्भाव हुआ है।

क्या संसार का परिचालन हमें अचम्भे में नहीं डाल रहा है? एक तरफ़ अपनी शीतल किरणों को बिखेरता हुआ चन्द्रक्षितिज के छोर पर डूबता हुआ दिखलाई देता है और दूसरी ओर अंधकार को चीरते हुये सूर्य की किरणें दिखलाई पड़ने लगते हैं। संसार के परिचालन का यह नियंत्रण किसके हाथ में है?

असंख्य सूर्य चन्द्र और तारों से युक्त अपरिमित ब्रह्माण्ड की देख-रेख कौन करता है?

शिशु के पैदा होने के पहिले माता के स्तन में दूध पैदा करने की दूरदर्शिता किसमें है?

वह कौन सा बड़ा वैद्य है जो हमारी जिह्वा पर शब्द पैदा कर देता है और हमारे जीवन मरण पर नियंत्रण रखता है? यह किसका चमत्कार है जो बट के छोटे से बीज में बट का पूरा वृक्ष समेट कर रक्खे हुए है?

इस प्रकार प्रकृति में शक्ति भरने वाला और उसका नियंत्रण करने वाला कौन है?

यह वही प्रभु है जिसका वर्णन प्रत्येक धर्म ने किया है और जो पग २ पर हमारा पथ-प्रदर्शन करता है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने २ धर्म के अनुसार इस प्रभु का भजन करें और उससे शक्ति पाकर अपने जीवन को सफल बनावें। धर्मों ने इस प्रभु के भजन के लिये भिन्न २ मार्ग बताए हैं, परन्तु प्रत्येक मार्ग से हम उसी लक्ष्य पर पहुँचते हैं। हमें चाहिये कि हम किसी धर्म से द्वेष न करें और जिस धर्म पर हमारा विश्वास है उसके बतलाए हुए मार्ग से हम प्रभु का स्मरण करें।

भिन्न २ समय में ईश्वर के भजन करने की भिन्न २ रीतियां रही हैं। हिन्दू शास्त्र के अनुसार मनुष्य का जीवन चार भागों में बंटा हुआ था। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ

और संन्यास । लोग चौथेपन में संन्यास धारण कर एकांत-वासी हो शेष जीवन ईश्वर-भजन में बिता देते थे ।

इस समय भी सन्यासियों की कमी नहीं है परन्तु यह प्रथम सब के लिए सम्भव नहीं है। हम प्रत्येक अवस्था में थोड़ा समय निकाल कर ईश्वर आराधना में व्यतीत कर सकते हैं। हम कहीं भी हों, किसी भी अवस्था में हों, हमें सर्वदा ध्यान रखना है कि एक अदृश्य शक्ति हमारे सब कामों को देख रही है। वही शक्ति ईश्वर है। हम कोई ऐसा काम न करें जिस पर हमें लज्जित होना पड़े। सर्वदा ऐसा ही ध्यान रखने से हम अपनी त्रुटियों से ऊपर उठ जावेंगे और हमारा जीवन सुन्दर और सराहनीय जीवन होगा।

जो शक्ति सर्वव्यापी ही नहीं सब कुछ है, जिसकी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता, जो अखिल विश्व का नियंत्रण करती है, उसी को हम भगवान्, खुदा, गाड आदि नाम से पुकारते हैं। वह शक्ति हमारी समझ के बाहर है। तर्क करके हम उसको नहीं समझ सकते। वेद, क़ुरान, बाइबिल आदि शास्त्रों में इसी का गुण गान किया गया है, परन्तु उसके गुणों का आदि अंत नहीं है।

वह अनादि है, अपार है और निगम है। वेद ने तो उसको 'नेति नेति' कह कर पुकारा है।

यह स्थूल ब्रह्माण्ड, सूक्ष्म संसार, हमारा स्थूल शरीर इन्द्रियाँ, सुख-दुख, इच्छा, मन, बुद्धि, आदि जड़ पदार्थ हैं

इन्हीं को प्रकृति, माया आदि नामों से पुकारा गया है। प्रभु की ही शक्ति इनको प्रकाशित तथा जीवित रखती है।

हिन्दू-पुराण बतलाता है कि अनादि प्रभु अपनी माया का पूर्ण ज्ञान रखते हुए, मानव के उत्थान के लिए अनेक शरीरों में प्रवेश करता है। उसी को अवतार कहते हैं। वह अपनी भावना से अखिल ब्रह्माण्ड का नियंत्रण करता है और मनुष्यों के बीच में आदर्श बन कर उनका उत्थान करता है। मनुष्य को माया का ज्ञान नहीं है परन्तु इस अवतार को माया का सर्वदा ज्ञान रहता है। मनुष्य सीमाबद्ध है और अवतार असीम है। प्रभु की इस असीमता से प्रभावित हो मनुष्य उसके बतलाए हुए आदर्श का अवलम्बन कर माया को जानने का प्रयत्न करता है और इसी में उसका उत्थान है। यही जीवन का उद्देश्य है। माया पर प्रभुता प्राप्त करना ही जीव का मुक्त होना है। इसी ज्ञान से मानव जन्म और मरण से छुटकारा पाकर अनादि प्रभु में इस प्रकार मिल जाता है जैसे समुद्र में पानी का कण। प्रकृति केवल सत, अथवा सर्वदा रहती है। जीव सत और चित है अथवा सर्वदा रहने वाला है और चैतन्य रूप भी है और प्रभु सत, चित और आनन्द अथवा अनादि, पूर्ण चैतन्य और आनन्दमय भी है। जीव माया पर विजय पाकर आनन्दत्व को प्राप्त कर सकता है।

माया पर विजय पाने के दो मार्ग बतलाए गए हैं

ज्ञान और भक्ति। शास्त्र और पुराणों ने इन दोनों मार्गों पर प्रकाश डाला है। दोनों का लक्ष्य एक ही है और दोनों ही जीव को प्रभु का ज्ञान कराते हैं। ज्ञान मार्ग कठिन है। वेदांत, उपनिषद्, सांख्य, योग आदि ग्रंथों के अध्ययन से ही नहीं वरन् त्याग और अनुभव से उसकी प्राप्ति हो सकती है। अहंकार ममता को त्याग कर स्वच्छ हृदय से प्रभु की शरण में जाना भक्ति है। कृष्ण भगवान् ने गीता में बतलाया है "सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज..." ईसा मसीह ने भी बतलाया है कि प्रभु की शरण में आने से मनुष्य का पाप सूली की तरह जल जाता है। रामायण में तुलसी दास जी भी कहते हैं :—

कोटि विप्र बध लागै जाही। शरण गये नहिं त्यागों ताही।"

शरण में जाना क्या है, अपने बुरे कर्मों पर पश्चाताप करना तथा प्रभु के सामने अपनी त्रुटियों को स्वीकार करना है। पुराण में भगवान् के २४ अवतार बतलाए गए हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध आदि अवतार हैं। ईसाई लोग ईसा को भी अवतार मानते हैं।

अनादि प्रभु के अनेक नाम हैं। ओ३म्, ईश्वर, प्रभु, भगवान्, गाड, अल्लाह, खुदा आदि से उसी प्रभु का बोध होता है। अवतारों के नाम से भी प्रभु का ही बोध होता है।

प्राणी ध्यान, भजन, पूजा, जाप, प्रार्थना आदि से प्रभु की भक्ति करता है। जप आदि से सदाचार की तरफ

हमारी प्रवृति होती है और प्रार्थना से हमें शक्ति मिलती है:—

जप भगवान् के नाम का किया जाता है। नाम अनेक हैं। भगवान् के नाम 'राम' की महिमा बतलाते हुये तुलसी दास जी लिखते हैं:—

बन्दौ राम नाम रघुबर को। हेतु कृसानु-भानु-हिमकर को॥
बिधि-हरि हर मय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥
महामंत्र जोइ जपत महेसू। काशी मुक्ति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
जान आदि कवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
नाम प्रभाव जान शिव नीको। काल कूट फल दीन्ह अमी को॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु पर लोक निबाहू॥
देखहि रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना॥
रूप विशेष नाम बिनु जाने। करतल गत न परहिं पहिचाने॥
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे॥
नाम रूप गति अकथ कहानी। समझत सुखद न बनत बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहु, जो चाहसि उजियार॥

महात्मा गांधी की रामध्वनि प्रसिद्ध ही है।

"रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम।
ईश्वर अल्ला एकै नाम, सबको सम्मति दे भगवान॥"

भक्त कवियों के द्वारा भक्ति का बड़प्पन अनेक प्रकार से दर्शाया गया है।

तजौ मन हरि-विमुखन को संग।

जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग।
काम क्रोध मद लोभ मोह में, निसि दिन रहत उमंग॥
कहा भयो पय पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग।
कागहिं कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग॥
खर को कहा अरगजा लेपन, मर्कट भूषन अंग।
पाहन पतित बान नहिं वेधत, रीतो करत निषंग॥
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग।

सुआ! चल वा बन को रस लीजै

जा बन कृष्ण नाम अमृत रस, स्रवन पात्र भर पीजै।
को तेरो पुत्र, पिता तूं काको, मिथ्या भ्रम जग केरो॥
काल मंजार ले जैहै तोकों, तू कहै मेरो मेरो।
हरि नाना रस मुक्त छेत्र चल, हौं तोकों दिखलाऊं॥
सूरदास साधुन को संगति, बड़े भाग जो पाऊं।

तुलसी दास जी कहते हैं।

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।

हरि पद विमुख काहु न लह्यो सुख सठ यह समुझ सवेरो।
बिछुरे ससि रवि मन नयनन तें, पावत दुःख बहुतेरो॥
भ्रमत-भ्रमत निसि दिवस गगन में, तंह रिपु राहु बड़ेरो।
यद्यपि अति पुनीत सुर सरिता, तिहुँ पुर सुयश घनेरो॥
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहियो ताहू करो।
छूट न विपति भजे बिनु रघुपति, श्रुति संदेह निबेरो॥
'तुलसीदास' सब आस छाड़ि कै, होउ राम के चेरो।

मन की मनहीं माहि रही।
ना हरि भजे, न तीरथ सेवे, चोटी काल गही।
दारा, मीत, पूत, रथ, संपति, धन, जन, पूर्न मही॥
और सकल मिथ्या यह जानो, भजना राम सही।
फिरत-फिरत बहुते युग हार्यो, मानुस देह लही॥
'नानक' कहत मिलन की बिरियाँ, सुमिरत कहा नहीं।

रहना नहिं देश बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े घुल जाना है।
यह संसार कांट की बाड़ो, उलझ पुलझ मर जाना है॥
यह संसार झाड़ औ झांकर, आग लगे बरि जाना है।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, सतगुरू नाम ठिकाना है॥
कंचन मंदिर ऊँचे बनाय कै, मानिक लाय सदा झमकावै।
प्रातहिं ते सगर नगरी गज मोतिन की ही तुलानि तुलावै।
पाले प्रजानि प्रजापति सों, धन संपति सों मघवाहि लजावै।
ऐसे भयो तो कहा 'तुलसी' जो सांवरे ग्वालसों नेह न लावै॥
झूमत द्वार अनेक मतंग सो, अम्बु भरे मद नीर चुवाते।
तीखे तुरंग मनो गति चंचल, पौन के गवनहु ते बढ़ि जाते॥
भीतर चन्द्रमुखी अवलोकहि बाहर भूप जुरे न समाते।
ऐसे भये तो कहा 'तुलसी' जो वै जानकि जीवन राम न राते।

भक्ति की महिमा बतलाते हुये कवियों ने अनेक प्रकार से भगवान् का गुण गाया है और भक्ति की महिमा बतलाई है। परन्तु भक्ति करना तो आसान नहीं। संसार का बंधन प्राणी मात्र को बांधे हुए है और उससे छुटकारा मिलना आसान नहीं। कवि कहता है।

यही माया के जाल परि, कत कुरंग अकुलाय।
ज्यों-ज्यों सुरझि भाग्यो चहै, त्यों-त्यों अरूझत जाय॥

इस माया का जाल सत्य ही भयंकर है और प्राणि-मात्र को भुलाये हुए है। बालक जन्म लेता है, बड़ा होता है, विद्याध्ययन करता है, संसार का सामना करते हुए अनेक प्रकार के कष्ट, मान और अपमान का सहन करता है और अंत में शरीर त्याग देता है। इसके पश्चात् क्या होता है इसका ज्ञान नहीं।

कृष्ण भगवान ने गीता में अर्जुन को सीख देते हुए कर्म की महिमा बतलाई है। संसार का सामना करना भी कर्म ही है। अतएव सफलता पूर्वक संसार का सामना करना तो कर्तव्य ही है, परन्तु इसके परिणामों में लिप्त हो जाना ही भूल है और यही माया का जाल है। भगवान् ने बतलाया है कि भक्ति और ज्ञान के द्वारा प्राणी इस जाल को काट सकता है और इस जाल के कट जाने से ही अंतिम सुख की प्राप्ति होती है। जीवन का उद्देश्य यही है कि संसार का सामना करते हुए भक्ति और ज्ञान के द्वारा जीव अंतिम सुख की प्राप्ति करे।

अखिल ब्रह्माण्ड के नियंत्रणकर्ता भगवान् की कृपा से ही हमें ज्ञान और भक्ति की प्राप्ति होती है और संसार का सामना करने में भी सफलता मिलती है।

महात्मा गांधी का जीवन हमारा पथ-प्रदर्शक है। महात्मा ने संसार का सफलता पूर्वक सामना किया। इसका श्रेय है भगवान् पर विश्वास, भक्ति और प्रार्थना।

. जीवन की सफलता के लिये भक्ति और ज्ञान की आवश्यकता है और भगवान् की अटूट सत्ता पर विश्वास रखना ही इनकी प्राप्ति का मुख्य साधन है। भक्त शिरोमणि तुलसी दास जी ने रामायण में कहा है।

राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाय राम-प्रभुताई॥
जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीत होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढ़ाई। जिमि खगपति जलके चिकनाई॥
बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होई विराग बिनु।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिहि हरि भगति बिनु॥
को विश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।
चलै की जल बिनु नाव,कोटि यतन पचिपचि मरिय॥
बिनु संतोष निकाम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥
रामभजन बिनुमिटहिं नकामा। थल विहीनतरु कबहुँ किजामा॥
बिनुविज्ञान कि समता आवै। कोउ अवकाशकिनभ बिनुपावै॥
श्रद्धा बिना धरम नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावै कोई॥
बिन तप तेज कि कर विस्तारा। जल बिन रस कि होइ संसारा॥
शीलकि मिलुबिन बुध सेवकाई। जिमि न तेज बिनुरूपगोसाई॥
निजसुख निनुमनहोइकि थीरा। परस कि होइ विहीन समीरा॥
कवनिउसिद्धिकिबिनुविश्वासा। बिनुहरि भजनभवभय नासा॥
बिनु विश्वास भक्ति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह विश्राम॥

भगवान् की कृपा प्राप्त करने का मुख्य साधन छल रहित प्रार्थना ही है। हिन्दू शास्त्रों में वर्णित गायत्री मंत्र एक प्रार्थना ही है।

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्,
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

सर्व व्यापी निराकार और सब कुछ साकार विराट् प्रभु से प्रार्थना की गई है कि वह हमारी बुद्धि को उज्वल कर दे। बुद्धि की उज्वलता ही माया से परे जीव की असीम शक्ति को प्रगट कर सकती है। प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है कि वह नियम पूर्वक इस प्रार्थना से भगवान् की दया प्राप्त कर अपनी बुद्धि उज्वल करे।

कवि सम्राट रवीन्द्र की गीताञ्जलि में इसी प्रार्थना का भाव झलक रहा है।

"अपनी चरण धूलि के तल में।
मेरे मस्तक को नत कर दो॥
सारा अहंकार है मेरा।
अश्रुधार में मज्जित् कर दो॥
निज को गौरव-पथ पर लाऊँ।
अपना ही अपमान बुलाऊँ।
अपने ही में सीमित रहकर॥
मत पल मरने का वर दो।
सारा अहंकार है मेरा।
अश्रुधार में मज्जित् कर दो॥
दो निज चरम शांति लोकोत्तर।
परम कांति प्रणों में दो भर॥
मेरे हृदय-पद्म-दल में बस।
मुझको छाया उज्जलवतर दो॥
सारा अहंकार है मेरा।
अश्रुधार में मज्जित् कर दो॥

मुसलमानों की नमाज़ एक अखिल ब्रह्मको प्रार्थना ही है।

ईसाई धर्म में तो प्रभु ईसा ने पग पग पर प्रार्थना के द्वारा ही शक्ति प्राप्त करने का मार्ग बतलाया है। हम किसी कार्य के प्रारम्भ में ईश्वर की प्रार्थना के द्वारा उसकी पूर्ति के लिए शक्ति मांगे, कार्य के अंत में उसका धन्यवाद दें। अपने में त्रुटि का अनुभव करते हुये भी प्रार्थना द्वारा भगवान् से शक्ति पाकर जीवन सफल करें—स्वार्थ के लिये नहीं वरन् त्रुटि में शक्ति संचय और भगवान् की ही इच्छा पूर्ति के लिए।

भगवान् ही हमारा सब कुछ है और हम प्रार्थना द्वारा उसकी कृपा प्राप्त करें। महाभारत के भार से भ्रम में पड़ा हुआ अर्जुन भगवान् की प्रार्थना करता है।

त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव।
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव॥
त्वमेव विद्या च द्रविणं त्वमेव।
त्वमेव सर्वम् मम देव देव॥

—:※:—

६–सदाचार

हमने जननी, जन्मभूमि, गुरु, समाज और ईश्वर के प्रति अपने कर्तव्य देखे। इन कर्तव्यों का ठीक २ पालन ही जीवन का उद्देश्य है। उद्देश्य एक कार्य है और कर्तव्यों का पालन कारण है। जिस प्रकार मिट्टी के बने हुये घड़े के कण २ में मिट्टी का अंश रहता है, इसी प्रकार कार्य में कारणों का भी समावेश होता है। कार्य कारण से परे कोई वस्तु भिन्न नहीं है वरन् कारण का ही एक अभिन्न रूप है। कार्य परिणाम है और कारण साधन है। यदि साधन ठीक हैं तो परिणाम की चिंता निरर्थक है। यदि हमारे कर्तव्य ठीक है तो उद्देश्य के ठीक होने में कोई आशंका नहीं।

साधनों का उत्तम होना परिणाम की उत्तमता का द्योतक है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इसका उल्टा भी ठीक हो। अतएव ऐसा विचार हमें भ्रम में डालने वाला है कि हम परिणाम ठीक करलें चाहें उसके साधन कैसे भी हों। एक विद्यार्थी ने किसी वर्ष नकल करके परीक्षा में सफलता प्राप्त करली। साधन अच्छा नहीं था परन्तु परिणाम अच्छा हुआ। उसने समझा परिणाम ही मुख्य है चाहे साधन जैसा भी हो। यह उसका भ्रम था। दूसरे वर्ष वही विद्यार्थी नकल करते हुये पकड़ा गया और दो वर्ष के लिए परीक्षा से

अलग कर दिया गया। अब उसने समझा कि बुरे साधनों का परिणाम कभी अच्छा हो ही नहीं सकता। कर्तव्य पथ से विचलित होने पर हमारी जीवन यात्रा ऐसे स्थान पर रुकेगी जहाँ निराशा और दुःख के अतिरिक्त कुछ नहीं।

बालपन में कुछ कारण आ जाते हैं जो हमें कर्तव्य से अलग कर देते हैं। कभी-कभी तो हमें ऐसे लोगों का संग मिल जाता है जो हमारी सुवृत्तियों को बदल देता है और हम सतमार्ग छोड़ कर कुमार्ग पर चलने लगते हैं। मित्रों के चुनने में बड़ी ही सावधानी करनी चाहिए। पाठशालाओं में बहुत अंश तक चरित्र भ्रष्टता कुसङ्ग का ही परिणाम होता है। कुसङ्ग से बढ़ कर कोई दुःख नहीं और सतसङ्ग से बढ़ कर कोई सुख नहीं। तुलसी दास जी लिखते हैं।

बरु भल वास नरक कर ताता। दुष्ट सङ्ग जनि देय विधाता॥
"तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक सङ्ग।
तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसङ्ग॥"

सङ्ग के अतिरिक्त अनेकों कारण हैं जो हमें कर्तव्य पथ से अलग करना चाहते हैं। इन कारणों से बचने के लिए हम में बल होना चाहिए और इस बल के लिए हमें प्रतिदिन भगवान् पर विश्वास रखते हुए उससे प्रार्थना करनी चाहिए। पग-पग पर हमारे लिए संसार की चकाचौंध एक परीक्षा है और हमें उस परीक्षा में उत्तीर्ण होना है। ईसा ने भगवान् से प्रार्थना की है "हे प्रभ मुझे परीक्षा

में न डाल'। ईसा समान व्यक्ति को परीक्षा से डर था। हम भी भगवान् से प्रार्थना करें कि वह हमें परीक्षा में न डाले और यदि हम परीक्षा में पड़ें तो वह हमें शक्ति प्रदान करे कि हम उसमें उत्तीर्ण हों।

कर्तव्यों का सुचारु रूप में पालन करना ही सदाचार है। सदाचार का अर्थ है उत्तम आचरण। आचरण उत्तम तभी हो सकता है जब इसका कारण उत्तम हो, क्योंकि कार्य की उत्तमता कारण पर ही निर्भर है। हमारे आचरण का कारण हमारा विचार है। जैसा विचार है वैसा ही आचरण होगा। विचार से ही प्रेरित होकर हम कार्य करने के लिए तत्पर होते हैं। यदि हमारे विचार शुद्ध हैं। तो हमारा आचरण भी शुद्ध होगा।

विचार यानि ध्यान से आसक्ति होती है। आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है। यदि कामना सिद्ध न हुइ तो क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मोह, मोह से भ्रम, भ्रम से बुद्धि का नाश और बुद्धि के नाश से प्राणी का नाश हो जाता है। कृष्ण भगवान् ने गीता में इसी बात पर ज़ोर दिया है।

ध्यायतो विषयान पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
संगात संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशाद् प्रणश्यति॥

अतएव विचारों की शुद्धता मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। मनुष्य विचार शील प्राणी है और विचार शक्ति ही के कारण वह ईश्वर की सृष्टि का सर्वोत्तम जीव माना गया है। यदि बात ऐसी है और विचार ही मनुष्य के उद्देश्य साधन का एक प्रमुख मार्ग है तो विचारों का शुद्ध रखना हमारी शिक्षा का एक अंग होना चाहिए। खेद की बात है कि हम इस पर ध्यान नहीं देते। हम अपनी जीवन नौका विचारों के अगम्य सागर में छोड़ देते हैं, और नाना प्रकार की कुसंस्कार जन्म लहरें उसका मार्ग भ्रष्ट कर उसे भ्रम में डाल देती हैं और हम नाना प्रकार के कष्टों को भोगते हुए दुःख-मय जीवन व्यतीत करते हैं।

कुसंस्कार क्या है? जब मनुष्य अपने विचारों का स्वामी है तो वह कुसंस्कारों के वशीभूत क्यों हो जाता है? पहिले लिखा जा चुका है कि कुसङ्ग कुसंस्कार का जन्मदाता होता है। कुसङ्ग के प्रभाव से यदि हम एक बार असत मार्ग पर आरूढ़ हो गये तो हमारी इस त्रुटि ने हमारो प्रज्वलित सुद्धि पर अधिकार का एक धुंधला चिन्ह बना दिया और कुद्रुति को भी एक हल्की रेखा खींच दी। इस प्रकार असत मार्गों की पुनरावृत्ति होते २ हमारी सुवृत्ति पूर्ण-तया अधिकार से हट जाती है और कुवृत्ति प्रज्वलित हो उठती है। हम कुमार्गगामी बन जाते हैं और संसार तथा ईश्वर दोनों के सामने अपराधी ठहरते हैं। इसका विलोम सतसङ्ग द्वारा

सतमार्ग का आश्रय लेना है। इससे हमारी कुवृत्ति मिट जाती है और हमारा संस्कार उत्तम हो जाता है। एक बात और है। जन्म के साथ ही हमारे कतिपय संस्कारों का भी जन्म हो जाता है। ऐसे संस्कार जन्म जन्मांतर से पोषित किये गये हमारे पूर्वजों की देन हैं। जन्म होते ही बालक में दूध पीने की प्रवृत्ति कहाँ से आती है? अंडे से निकलते ही चिड़िया का बच्चा दाने पर चोंच मारना कैसे जान जाता है? ऐसे ही कार्मों से जन्म के साथ जनित संस्कारों की पुष्टि होती है। संस्कार जैसे होते हैं वैसे ही काम की प्रवृत्ति भी होती है। ऐसे संस्कार हमारे पूर्वजों की देन तो हैं, इनके अतिरिक्त हिन्दू शास्त्रों के मतानुसार हमारे अनेक जन्मों के एकत्रित किए हुए संचित संस्कार भी होते हैं। इन विशेष सन्स्कारों के द्वारा ही हमारे व्यक्तित्व की विशेषता प्रकट होती है। ये सन्सकार अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। यदि बुरे हुए तो हमारी प्रवृत्ति कुमार्ग की तरफ झुक जाती है।

हम अपने उत्तम कर्मों के द्वारा जन्म जन्मांतर के संचित कुसंस्कार को भी सुसंस्कार में परिणित कर सकते हैं। मनुष्य विचार का स्वामी है। मन में यदि कुसंस्कार प्रेरित बुरे काम का विचार आया और यदि इस कुवृत्ति के विरुद्ध विचार कर हमने इसे दबा दिया तो पूर्व संचित कुसंस्कार पर हमारी प्रथम विजय हुई। बार २ की पुनरावृत्ति से ऐसे संस्कार एक दम मिट जायेंगे और हमारे ऊपर से उनका

प्रभाव जाता रहेगा। सच पूछिये तो शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य यही है और होना भी चाहिये कि हम कुसंस्कारों को मिटा कर सुसंस्कारों की नींव पुष्ट करें।

यदि हम इस जीवन में भी कुमार्ग पर बहुत आगे बढ़ गये हैं और हमारे पूर्व कुसंस्कार पुष्ट होते जा रहे हैं तो भी हम संकल्प के द्वारा उन्हें मिटा सकते हैं और उत्तम संस्कारों को पुष्ट कर सकते हैं! शास्त्र बतलाता है:—

"मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

पर स्त्री माता के समान, पर द्रव्य मिट्टी के समान और प्राणि मात्र को अपने समान जो देखता है वही पण्डित है।

चाहे हम कितना ही नीचे गिरे हों उपरोक्त तीनों संकल्प हमें बचा सकते हैं और हम अपनी रक्षा कर ईश्वर और संसार दोनों के सामने सीधे खड़े हो सकते हैं और भ्रम में पड़ी हुई हमारी जीवन नौका किनारे लग सकती है।



७–जीवन यात्रा

भव सागर में जीवन नौका तैर रही है। सदाचार की पतवार द्वारा ही यह नौका किनारे पर आ सकती है। एक बात और है। संसार के अनुपम चमत्कार सामने हैं। इच्छा कहती है कि जो कुछ है मेरा है और इसको नौका पर स्थान मिलना चाहिये। बोझ धीरे २ बढ़ने लगता है। नाव भारी हो जाती है। पतवार की शक्ति क्षीण होने लगती है और नौका का पार होना असम्भव हो जाता है। इच्छा जनित मोह बढ़ता ही जाता है और संसार के आकर्षणों से नाव का बोझ बढ़ाने में ही वह अपना कल्याण समझता है। जीव यह नहीं जानता कि वह अपने ही बनाये हुये जाल में फंस रहा है। कवि कहता है।

"था माया के जाल परि कत कुरंग अकुलाइ।
ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यो चहै त्यों-त्यों अरुझत जाइ

ऐसा क्यों होता है? पश्चिमीय विद्वान 'लाक' कहता है 'जन्म के समय बच्चे का मस्तिष्क स्वच्छ पटरी के समान है जैसा चिन्ह चाहे बना दिया जाय"। प्रसिद्ध कवि 'वर्ड्सवर्थ' के विचार से भी मनुष्य का वर्तमान जीवन बहुत कुछ समाजकृत है। यदि ऐसा ही है तो व्यक्तित्व में विभिन्नता का आविर्भाव कैसे हुआ? मनुष्य ने अपने ही फंसने के

लिये जाल बनाकर अपना जीवन दुःख मय क्यों बना दिया ?

जैसा पहिले लिखा जा चुका है हमारा जन्म संस्कारों के साथ होता है। संस्कार हमारे पूर्वजों की भी देन है और अपने ही जन्म जन्मांतरों के कर्म द्वार भी संचित किये गये हैं। समय आने पर मनुष्य इन्हीं संस्कारों का दास बन जाता है और इन्हीं की प्रेरणा से कार्य करना आरम्भ कर देता है। भिन्न २ व्यक्तियों के संस्कार भिन्न २ हैं और यही कारण है कि संसार में विभिन्नता का साम्राज्य है। वर्तमान समाज का विकास भी इसी विभिन्नता के आधार पर हो रहा है।

यदि बात ऐसी है तो एक प्रकार से मनुष्य संस्कारों का दास हो है और वह इनसे छुटकारा पाने में असमर्थ है। इस बात में सत्यता होते हुए भी परिस्थिति भिन्न है। मनुष्य में तर्क वितर्क की शक्ति है, वह चैतन्य है और यह चैतन्यता उस अपार शक्ति का अंश है जो अखिल ब्रह्माण्ड का नियंत्रण करता है। इस शक्ति के आधार पर मनुष्य संस्कारों पर विजय पा सकता है और भविष्य के लिये नूतन संस्कारों की जड़ जमा सकता है।

इच्छा-शक्ति पर मनुष्य का अधिकार होते हुये भी उसकी तर्कना शक्ति भ्रम में पड़ जाती है। वह निश्चय नहीं कर सकता कि क्या अच्छा है और क्या बुरा ? किसको

अपनाना है और किसका परित्याग करना है ? वह पथ-प्रदर्शन चाहता है।

मनुष्य को यह पथ-प्रदर्शन कैसे प्राप्त हो ? इसी पथ-प्रदर्शन के लिये धार्मिक ग्रंथों की सृष्टि हुई है। शास्त्र, उपनिषद, वेद, पुराण, कुरान, बाइबिल लिखे गये हैं और बड़े २ उपदेशकों के अवतार हुए हैं। पथ-प्रदर्शन के लिए नाना प्रकार के मार्ग निर्धारित किए गए हैं। कोई कहता है कि जो मार्ग अपने लिये सुखद प्रतीत हो वही सच्चा मार्ग है, कोई कहता है जो मार्ग अधिक से अधिक लोगों के लिये सुखद हो वह सच्चा मार्ग है, कोई कहता है कि जिस मार्ग का समर्थन अंतः करण के द्वारा हो सके वही मार्ग सच्चा मार्ग हो सकता है, इत्यादि इत्यादि।

इस प्रकार की भिन्न २ तर्कनाएं भी समाजकृत हैं और उन पर समाज की ही छाप है। इन तर्कनाओं के द्वारा भी मनुष्य की विचार शक्ति भ्रम में पड़ जाती है और सच्चा पथ-प्रदर्शन न मिलने के कारण वह संस्कारों से प्रेरित होकर जीवन नौका का बोझ हलका करने में असमर्थ ही रहता है और जीवन की समस्या जटिल होती जाती है।

यद्यपि भिन्न २ मार्गों के भ्रम में पड़कर जीवन को सच्चे मार्ग के निर्धारित करने में कठिनता पड़ती है तथापि सच्चे मार्ग की लीक अमिट है। सत्य अनादि है, एक है, और ब्रह्म स्वरूप है। जीव भी ब्रह्म का ही अंश है और

उसमें वह शक्ति है कि वह अपना स्वरूप पहचान सके। आवश्यकता है कि वह अपनी शक्ति को जो भ्रम की राख से ढक गई है प्रज्वलित करे। भ्रम को मिटाने के लिये सदाचार एक उत्तम श्रेय है। माता, पिता, गुरू, ईश्वर आदि के समक्ष अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, हम अपनी इच्छाओं पर विजय पा सकते हैं और सच्चे मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं।

संस्कार जनित इच्छाओं की प्रेरणा से हम भ्रमित मार्ग का आश्रय लेते हैं, परन्तु सदाचार-जनित शक्ति इच्छा के विरुद्ध हमें सच्चे मार्ग का संकेत करती है और यदि हम चाहें तो भ्रमित मार्ग को छोड़ भी सकते हैं। इच्छा विरुद्ध कार्य करने में हमें कष्ट होता है, परन्तु अपने कल्याण के लिये, अपनी जीवन नौका को हलका करने के लिए ऐसे कष्टों को उठाना ही हमारा कर्तव्य है। अच्छी शिक्षा का भी यही उद्देश्य है कि वह हमारी प्रवृत्ति को बुरे कर्मों से हटा कर उत्तम कार्यों की तरफ झुका दे।

ऐसे अवसरों पर हमें कुछ त्याग करना है। त्याग करना है सरल और देखने में सुखप्रद तथा अंत में दुख देने वाले मार्गों का और ग्रहण करना है कठिन तथा अंत में सुखद मार्गों का।

केशव की अवस्था बारह वर्ष की है। उसको खेल-कूद में आनन्द आता है। परन्तु पाठशाला जाना उसको कष्ट

मद प्रतीत होता है। प्रति दिन घर से वह कह कर बाहर जाता है कि वह पाठशाला जा रहा है, परन्तु पाठशाला न जाकर मार्ग में अपने अन्य साथियों से मिलकर खेलने लगता है। उसके पिता को इस बात का पता चलता है और वह केशव के साथ कठोरता का बर्ताव कर उसे पाठशाला जाने के लिये बाध्य करता है। केशव को खेल के सुख का त्याग करना पड़ता है। इस त्याग में उसे कष्ट होता है। वह अपनी सुखद इच्छा का हनन करता है और साथ ही पिता के प्रति उसमें विद्रोह का भाव पैदा होता है। धीरे २ केशव का स्वभाव बदल जाता है और पाठशाला जाने में ही उसको आनन्द मिलने लगता है। इसी प्रकार अनेक लोगों में बुराइयाँ आ जाती हैं और इन्हीं बुराइयों में उन्हें आनन्द आने लगता है। बल प्रयोग से यह स्वभाव बदला जा सकता है, परन्तु आरम्भ में इच्छा की प्रतिकूलता करनी पड़ती है और बल प्रयोग करने वाले के प्रति हिंसात्मक भाव जाग्रत होता है। इस प्रकार के त्याग को हम हिंसात्मक त्याग कह सकते हैं। अच्छे स्वभावों के डालने के लिये प्रारम्भ में इस प्रकार के त्याग की आवश्यकता पड़ती है। बालक की प्रकृति इच्छा जनक सुखद मार्ग का आश्रय लेती है और इच्छा संस्कार तथा वातावरण से प्रेरित होती है। यदि संस्कार तथा वातावरण दूषित हुए तो बालक की प्रवृति को कलुषित कार्यों में ही सुख प्राप्त होने लगता है।

शिक्षा का उद्देश्य है कि वह बालक को प्रवृत्ति को इस कलुषित कार्य से हटा कर सुन्दर कार्यों में लगा दे। प्रारम्भ में बालक को कष्ट होगा, हिंसात्मक भाव जागेगा, परन्तु धीरे २ प्रवृति बदल जायगी और कुसंस्कार तथा दूषित वातावरण जनित इच्छा का हनन हो जावेगा।

त्याग की चरम सीमा अहिंसा है। चाहे त्याग कितना ही बड़ा हो, यदि उसके करने में किसी प्रकार की अहिंसा जागृत न हो तो वह उच्च कोटि का त्याग है।

अयोध्या के राजा दशरथ ने निश्चय किया कि कल राम को राज्य-तिलक होगा। जब राम प्रातः राज्यभिषेक के लिए प्रस्तुत होते हैं, उन्हें बन जाने की आज्ञा मिलती है और उनके स्थान पर भरत को राज्य देना निश्चित होता है। राम प्रसन्नता पूर्वक राज्य का त्याग कर बन जाना स्वीकार करते हैं। उनके मन में किसी प्रकार की हिंसा का प्रादुर्भाव नहीं होता।

भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू बिधि सब बिधि मोहि सन्मुख आजू।
कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उपमा अंगनि छाई।
औध तजी मग बास के रूख ज्यों पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई।
संगसुबंधु पुनीत प्रिय मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।

राम बिना ममता और द्वेष, पिता के राज को एक राहगीर की तरह छोड़ कर बन जाने के लिए प्रस्तुत हो

जाते हैं। यह महान त्याग है। इस त्याग ने ही राम को मर्यादा पुरुषोत्तम की उपाधि से आभूषित किया।

महाभारत की तैयारी हो चुकी थी। कौरव और पाण्डवों की असंख्य सेनाएं लड़ने के लिए प्रस्तुत थीं। पाण्डवों की विजय अर्जुन के ऊपर निर्भर थी और कौरवों की आशा का श्रेय एक मात्र कर्ण ही था। कर्ण का जन्म कुंडल और कवच के साथ हुआ था। कवच उसके अंग का एक भाग ही था। इस कुंडल और कवच के रहते हुए कोई भी शक्ति कर्ण को पराजय नहीं कर सकती थी। कर्ण इस बात को जानता था। वह यह भी जानता था कि अर्जुन अद्वितीय धनुर्धारी और उसका शत्रु है। अर्जुन का पक्ष लेकर इन्द्र छल के निमित्त कर्ण के पास आते हैं। सूर्य्य के द्वारा इस छल का पता कर्ण को लग जाता है। इन्द्र ब्राह्मण के वेश में कुण्डल और कवच का दान मांगते हैं और कर्ण प्रसन्नता पूर्वक अपने अंगों को काट कर कुंडल और कवच उतार देता है। यह त्याग की एक चरम सीमा है और कर्ण की विजय है। युद्ध में विजय प्राप्त करने पर भी कर्ण का यश उतना न होता जितना कि इस त्याग से हुआ।

महात्मा गांधी का अहिंसा व्रत प्रसिद्ध है। यह अहिंसा क्या है? यह केवल त्याग की चरम सीमा है। बड़े से बड़ा त्याग करने में अहिंसा का अभाव है। अछूत जातियों के लिये पृथक निर्वाचन बिल पास होने पर महात्मा ने ब्रिटिश

सत्ता के प्रतिकूल जीवन पर्यन्त अन्न त्याग करने का व्रत धारण किया परन्तु उस त्याग के समय भी वे ब्रूटिश सत्ता को अपना मित्र ही समझते थे। यह अहिंसात्मक त्याग है। ऐसे ही त्यागों ने महात्मा को संसार का सर्वोत्तम पुरुष बना दिया है।

त्याग ही हमारी जीवन नौका को हलका कर भव-सागर के पार कर सकता है। परमहंस स्वामी रामतीर्थ ने त्याग के विषय में एक उदाहरण दिया है। सूर्य्य की किरणों में सात रङ्ग हैं। हम किसी वस्तु को पीला इसलिए कहते हैं कि वह सात में से छः रङ्गों को सोख लेता है और पीले रङ्ग को छोड़ देता है। जो वस्तु जिस रङ्ग का त्याग करती है उसी के नाम से पुकारी जाती है। काली वस्तु को हम काली इसलिए कहते हैं कि वह सातों रङ्गों को सोख लेती है। जिस वस्तु में कोई त्याग नहीं है वह काली यानी पाप की निशानी है। सफेद वस्तु सातों रङ्गों का त्याग कर देती है और सफेद यानी उज्वल कहलाती है। उज्वलता पुण्य का चिन्ह है। यह उदाहरण सिखलाता है कि त्याग ही हमारा है और जिनको हम अपनाना चाहते हैं सच में वह हमारा नहीं है।

अहिंसात्मक त्याग ही हमें ऊपर उठाने वाला है और इसकी चरम सीमा मनुष्य की उन्नति की चरम सीमा है।

प्रत्येक सार्वजनिक कार्यों के लिए हमें व्यक्तिगत त्याग की आवश्यकता पड़ती है। हमारी शिक्षा और हमारे जीवन के उद्देश्य का अंतिम परिणाम यही है कि वह हमारे में अहिंसात्मक त्याग की क्षमता पैदा करे, कवि अहिंसात्मक त्यागियों की गणना करता है :—

क्षुधार्त रन्तिदेव ने दिया करस्थ थाल भी,
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थि-जाल भी।
उशीनर-क्षितीश ने स्व-मांस दान भी दिया,
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर-चर्म भी दिया।
अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।

—:※:—

८—आत्म प्रबलता और अहिंसात्मक त्याग

कभी २ यह भ्रम हो जाता है कि अहिंसात्मक त्याग आत्म निर्बलता का द्योतक है। जिस व्यक्ति में आत्माभिमान नहीं वह व्यक्ति उन्नतोमुख नहीं हो सकता; जिस जाति में अपनी मर्यादा का ध्यान नहीं वह जाति अधोगति को प्राप्त होती है। जिस देश में अपनी मान मर्यादा का ध्यान नहीं वह देश उन्नति की दौड़ में पीछे रह जाता है। अतएव यदि अहिंसात्मक त्याग में हीनता है तो वह हमें उठा नहीं सकता। सत्य इसके प्रतिकूल है। अहिंसात्मक त्याग अपरमित शक्ति का द्योतक है। वह शक्ति जो ईर्षा, द्वेष, काम और क्रोध पर विजय पा सकती है, साधारण शक्ति नहीं।

एक सैनिक अपने शारीरिक बल तथा संसारी ऐश्वर्य के आवेश में टहल रहा था। राजपूताना के रेगिस्तान में उसे धूल में लोटता हुआ एक साधु मिला। सैनिक ने आज्ञा दी कि साधु उसके साथ चले। साधु मौन रहा। सैनिक की तलवार साधु की गर्दन की ओर झुकी। साधु की गर्दन तलवार के सामने आई, परन्तु सैनिक का हाथ तलवार के साथ ऊपर ही उठा रहा।

सम्राट् अशोक को पहिले बौद्ध धर्म से घृणा थी। अपने गुप्तचरों के मुख से एक बौद्ध भिक्षु की सहन शक्ति

का परिचय पाकर उस स्थान पर आए जहाँ बौद्ध भिक्षु ध्यान में मग्न था। सम्राट ने भिक्षु को सावधान कर तलवार उठाई परन्तु सम्राट का हाथ तलवार के साथ जड़वत बना रहा। सम्राट् की सांसारी शक्ति आत्मीय शक्ति के सामने झुक गई और सम्राट ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की।

दोनों उदाहरणों में द्वेष रहित अंतरीय शक्ति ने बाह्य शक्ति को पराजित किया है, परन्तु इन उदाहरणों से पूर्ण अहिंसात्मक त्याग का बोध नहीं होता। त्याग अवश्य है और द्वेष रहित भी है परन्तु शक्ति का शक्ति के साथ विद्रोह है।

प्रभु ईसा अपने शिष्यों को बतलाते हैं कि यदि तुम्हारे गाल पर कोई एक थप्पड़ मारे तो तुम उसकी तरफ दूसरा गाल भी फेर दो। क्या इस शिक्षा में आत्महीनता है? गाल पर एक थप्पड़ लगने पर मन में हिंसा, द्वेष क्रोध आदि शक्तियों का आविर्भाव होता है। दूसरा गाल शत्रु की तरफ तभी झुक सकता है जब इन शक्तियों पर विजय प्राप्त हो। इन शक्तियों पर पूर्ण विजय प्राप्त करना विपक्षी के हृदय पर भी विजय की छाप रखना है।

जब प्रभु ईसा सूली पर चढ़ाए गए, उनके शत्रुओं ने कहा कि सूली पर से उतर कर वे प्रमाण दें कि वे ईश्वर के पुत्र हैं। ईसा सूली पर से उतर सकते थे। परन्तु उनकी सहनशीलता तथा शरीरिक बलिदान ने संसार में ऐसी शक्ति

प्रचार दी कि आज ४५ करोड़ स्त्री पुरुष उनके अनुयायी हैं।

बृटिश सत्ता ने महात्मा गांधी को बार २ जेल में रक्खा परन्तु प्रतिबार जेल से स्वयं ही अधिक शक्तिशाली होकर वे बाहर नहीं आये वरन् उनकी शक्ति ने सारे भारत के पुरुष स्त्रियों में एक ऐसी शक्ति डाल दी कि अंत में विश्व विजयिनी बृटिश सत्ता को गांधी के अहिंसात्मक त्याग के सामने झुकना पड़ा।

अंत में महात्मा गांधी को गोली लगी। लगने पर अपने हिंसक के सामने झुकना उस दृश्य को एक बार पुनः आँखों के सामने खड़ा कर देता है जब कि ईसामसीह क्रास पर चढ़ाए गए थे।

ईर्षा और द्वेष के ऊपर महात्मा गांधी की इस अंतिम विजय ने केवल भारत ही नहीं वरन् संसार भर में वह शक्ति बखेर दी है कि भविष्य को सारी शक्तियाँ अहिंसात्मक त्याग को शक्ति के आगे झुकती रहेंगी।

इस प्रकार यह त्याग आत्महीनता का नहीं प्रबल आत्मशक्ति का श्रोत है।

—:०:—

९– हमारी डायरी

हमने देखा कि संसार का आकर्षण, दूषित वातावरन, संस्कार जनित प्रवृति आदि अनेक ऐसी बाधाएँ हैं जो हमें सदाचार के मार्ग से अलग कर देती हैं और इनसे छुटकारा पाने के लिए हमें त्याग की आवश्यकता पड़ती है। प्रारम्भिक अवस्था में त्याग में हिंसा भी रह सकती है, परन्तु धीरे-धीरे हममें अहिंसात्मक त्याग की भी क्षमता उत्पन्न हो सकती है। ऐसी क्षमता के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। कवि कहता है:—

करत २ अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सिल पर होत निशान॥

अभ्यास संस्कार जनित दोषों को मिटा सकता है। अभ्यास कैसे हो ? मनुष्य इच्छा का स्वामी है। यह अपनी प्रवृति को बलपूर्वक जिस ओर चाहे मोड़ सकता है। हमको चाहिए कि हम प्रतिदिन कोई न कोई सुकार्य अवश्य करें और इसका एक लेखा रक्खें। प्रारम्भ में हमारा लेखा बहुत ही साधारण सुकार्यों का इतिहास होगा। धीरे २ हम बड़े से बड़े अहिंसात्मक त्याग के योग्य बन सकते हैं। एक बालक बाइसिकिल पर पाठशाला जा रहा है मार्ग में एक ओर एक अंधा अपनी राह टटोलता हुआ

सड़क के बीच में आना चाहता है। बालक देखता है कि कितने लोग भिन्न २ प्रकार के रथों पर सवार चले आ रहे हैं और अंधे की अवहेलना करते जाते हैं। बालक बाइसिकिल पर चलने के आनन्द को क्षण भर के लिये त्याग देता है और अंधे का हाथ पकड़ कर ठीक मार्ग पर कर देता है। सुकार्य के निमित्त यह प्रथम त्याग है। बालक अपनी डायरी में यह कार्य अंकित कर लेता है।

दूसरे दिन पिता के साथ सिनेमा जाने के कारण बालक अध्यापक के दिए हुए गणित के प्रश्नों के करने में असमर्थ रहता है। पूछने पर उसके मन में यह भावना उत्पन्न होती है कि वह कह दे कि सिर में दर्द था और इस कारण वह प्रश्नों को न कर सका। ऐसा कहने से उसे शीघ्र छुटकारा मिल जाता, परन्तु विचार करने पर वह इस आसान मार्ग का आश्रय नहीं लेता। अध्यापक से प्रश्नों के न करने का ठीक २ कारण बतला देता है। यद्यपि अध्यापक अप्रसन्न होता है, तथापि बालक ने एक झूठ का त्याग कर सत्य का मार्ग ग्रहण करके अपनी एक त्रुटि पर विजय पाई। अपनी डायरी में वह इस विजय का इतिहास लिख लेता है।

धीरे २ एक महीने में ३० या अधिक सुकार्यों का लेखा हो जाता है। वर्ष भर में सुकार्यों की संख्या ३६० हो जाती है। धीरे २ बालक में बड़े से बड़े त्याग की क्षमता आ जाती है।

बड़ा होने पर वही बालक शाम को टहलता हुआ एक बड़ी नदी के पुल को पार कर रहा है। नीचे नदी में देखता है कि एक वृद्ध डूब रहा है और लहरों से लड़ता हुआ अंतिम घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा है। बालक में उपकार करने का स्वभाव पड़ गया है और उसमें बड़े से बड़ा त्याग करने की क्षमता आ गई है। वह अपने प्राणों के मोह को छोड़ कर नदी में कूद पड़ता है और वृद्ध को सहारा देकर नदी पार करा देता है। इस महान कार्य का भी विवरण उसकी डायरी के पृष्ठों में आ जाता है।

इस प्रकार बालक में त्याग की क्षमता बढ़ती है।

हमें चाहिये कि हम इसी प्रकार एक त्याग की डायरी बनावें और धीरे २ अहिंसात्मक त्याग की क्षमता पैदा करें। अभ्यास में वह शक्ति है कि वह असम्भव को सम्भव बना दे।

—:o:—

मुद्रक—इलाहाबाद प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, कर्नलगंज, प्रयाग।